RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-3 • अंक-10 • त्रैमासिक • अप्रेल-जून, 2015

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	संस्कृत साहित्य में नारी	डॉ. शंकरलाल शास्त्री	6-20
2.	भगवद्गीता का कर्मयोग	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी	21-25
3.	समाज कार्य और सामाजिक मूल्य	डॉ. बिजेन्द्र प्रधान, डॉ. पुष्पा मिश्रा	26-28
4.	वैदिक ऋचाओं में मानवाधिकार का चिन्तन	डॉ. सूरज राव	29-33
5.	संवेग के मूल रहस्य की जैन दृष्टि	डॉ. समणी मल्लिप्रज्ञा	34-41
6.	पर्यावरणीय चिन्तन एवं जैन दर्शन	ममता जैन	42-47
7.	परिवार मूल्य, शिक्षा की नींव	डॉ. आभा सिंह, गिरधारी लाल शर्मा	48-50
8.	**Debating Gandhi**	**Dr. Anil Dutta Mishra**	51-55
9.	**Book Review of Redress Mechanisms for Victims of Domestic Violence**	**Dr. Sanjay Goyal**	56-58

भगवद्गीता का कर्मयोग

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

भगवद्गीता कर्म प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कर्म करने पर विशेष बल दिया गया है। इस ग्रन्थ की पृष्ठभूमि ही है कि युद्ध में कौरव-पाण्डव की सेनायें आमने-सामने होती हैं। अर्जुन को अपने विरोधी सेना में अपने ही सुहृदजन होने के कारण व्यामोह हो जाता है। वह युद्ध करने से मना कर देता है। अपना गाण्डीव नीचे रख देता है और स्पष्ट रूप से अपने सारथी भगवान कृष्ण से कह देता है कि वह युद्ध नहीं करेगा। अपने किसी मित्र, परिजन आदि पर वाण नहीं चलायेगा अर्थात् वह मोह के वशीभूत होकर कर्म से निवृत्त होने का संकल्प लेता है। इसी पृष्ठभूमि में कर्मयोग से च्युत अर्जुन को भगवान कृष्ण आदेश देते हैं और उसके मोह को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। जिस मोह के कारण अर्जुन अपने कर्म को छोड़ने का विचार करता है उसी मोह की निवृत्ति एवं कर्मयोग पर प्रशस्त होने का संदेश ही गीता का प्रमुख उद्देश्य है। बाल गंगाधर तिलक एवं डॉ. एनीवेसेण्ट का मानना है कि गीता यह करो, यह करो का संदेश देती है। अतः यह कर्म प्रधान ग्रन्थ है।

गीता में कर्म का जो विवेचन किया गया है वह मीमांसकों के कर्ममार्ग से पूर्णतया भिन्न है। मीमांसक वेदोक्त कर्म पर बल देते हैं। गीता के अनुसार अव्यक्त प्रकृति और उससे उत्पन्न गुणों से ही कर्म संभव होते हैं। अज्ञान के कारण व्यक्ति अपने आपको कर्त्ता मानता है जबकि वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं। अहंकारी व्यक्ति अपनी अज्ञानता के कारण अपने आपको कर्त्ता मानता है-

"प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार विमूढाणात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।"[1]

अर्थात् हे अर्जुन! वास्तव में सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं फिर भी अहंकार से मोहित हुए अन्तःकरण वाला व्यक्ति मैं ही कर्त्ता हूँ, ऐसा मान लेता है।

गीता यह भी स्पष्ट करती है कि प्रायः कर्त्ता सोचता है कि यह मैंने किया, यह मेरे द्वारा किया गया, यह मैं ही कर सकता हूँ। दूसरा कोई नहीं, इस कारण से उसे अहंकार होता है जबकि कर्त्ता तो कर्म के पांच कारणों में से एक है फिर पूरा श्रेय उसे ही क्यों मिले? गीता कहती है–

"अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथाग्विधम्
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।"[2]

कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! कर्म का कोई एक हेतु नहीं है। कर्म के 5 प्रमुख हेतु हैं- अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, चेष्टा, दैव। इन पांचों कारणों से कर्म संपादित होता है, किसी एक कारण से नहीं। अतः किसी एक कारण को पूरा श्रेय नहीं मिलना चाहिए।

गीता के पारायण से कर्म सम्बन्धी अनेक मन्तव्य दृष्टिगोचर होते हैं-

कर्म अनादि है— गीता में कर्म प्रवाह को अनादि माना गया है। इसकी अभिव्यक्ति संसार, प्रकृति, माया, दृश्य सृष्टि आदि से भी की गयी है। गीता में सब कर्मों को सात्विक, राजसिक एवं तामसिक इन तीन रूपों में विभक्त किया गया है। सतोगुण का परिणाम सुख, रजोगुणका परिणाम दुःख तथा तमोगुण का परिणाम प्रमाद या आलस्य माना गया है। तीनों गुणों का अस्तित्व सदैव रहता है। यह दूसरी बात है कि कभी कोई गुण प्रभावशाली होता है तो कभी अन्य गुण। सतोगुण जब रजोगुण एवं तजोगुण को आवृत्त कर लेता है तो व्यक्ति सुख की अनुभूति करता है। रजोगुण जब सतो एवं तमोगुण को ढक लेता है तो दुःख प्रभावी होता है। तमोगुण जब रजो एवं सतोगुण को आवृत्त कर लेता है तो व्यक्ति भारीपन अनुभव करता है। निद्रा, तन्द्रा एवं आलस्य की अनुभूति उसे होती है—

"सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।।
रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।[3]

गीता में ही यह स्पष्ट कहा गया है कि सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होता है और इस प्रकार कर्म का यह चक्र निरन्तर चलता रहता है—

"सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एवं च।
प्रमाद मोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेवच।।[4]

वेदोक्त कर्म में परिष्कार — जप-तप-यज्ञ आदि वेदोक्त कर्म माने जाते है। वेदों का कर्मकाण्ड में विश्वास है। वेद में अनेक कर्मकाण्डों के निश्चित फल मिलने का उल्लेख है। संन्ध्या वंदन से दीर्घायु प्राप्त होती है। इसी प्रकार ज्योतिष्ठोम यज्ञ से स्वर्ग, राजसूय से वैभव, अश्वमेघ से चक्रवर्ती पद, वाजपेय से सम्राट पदवी, पुत्रेष्टि से पुत्र प्राप्ति आदि फलों की प्राप्ति का उल्लेख वैदिक साहित्य में हुआ है। इस वर्णन की सत्यता पर विचार करते हुए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या इन सब फलों को प्राप्त कर लेने पर भी मनुष्य सन्तुष्ट हो जाता है? स्वर्गकामोयजेत' अर्थात् स्वर्ग की कामना से यज्ञ करना चाहिए। 'पुण्ये क्षीणे मर्त्यलोके विशन्ति' अर्थात यज्ञ करने से प्राप्त पुण्य के क्षीण हो जाने से स्वर्ग से मृत्युलोक में पुनः आना पड़ता है। सांख्य दर्शन में कहा गया है—

"दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतश्रेयान व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्"[5]

अर्थात् सुना गया कारण भी प्रत्यक्ष कारण की तरह निरर्थक है क्योंकि इसमें अपवित्रता, क्षय और इससे श्रेष्ठ कारण की संभावना है। अतः 'यज्ञ से स्वर्ग मिलता है; में उपर्युक्त तीन दोषों के कारण यह उपयुक्त नहीं है। जहाँ तक गीता की बात है, गीताकार वेदोक्त कर्म में आस्था रखते हैं किन्तु चूँकि गीता परिणाम अर्थात फल की चिन्ता न करने पर बल देती है जबकि वेदोक्त कर्म में प्रत्येक कर्म के फल की बात कही गयी है जिसमें परिष्कार की अपेक्षा गीता करती है। वेदोक्त कर्मों से भोग, ऐश्वर्य अवश्य प्राप्त होता है, स्वर्ग भी मिल सकता है, किन्तु कर्मकाण्ड का जटिल जाल तो छूटता नहीं और न जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिलता है। तृप्ति कभी मिलती नहीं। इस प्रकार कामनाओं से घिरा मन कभी भी शान्त नहीं हो सकता, फिर सुख की चर्चा ही व्यर्थ है। 'आशान्तस्य कुतः सुखम्' अर्थात् जिनका चित अशान्त है उसे कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए वेदोक्त कर्मों में परिष्कार की अपेक्षा की अभिव्यक्ति गीता में हुई है।

कामनाओं का त्याग आवश्यक है— गीता कर्म के त्याग की बात नहीं करती है अपितु कामनाओं के त्याग की बात करती है। कामनाएं दो प्रकार की होती हैं प्रथम कृत्रिम एवं द्वितीय स्वाभाविक कामना। कामनाओं के त्याग से तात्पर्य कृत्रिम कामनाओं के त्याग से है। सम्पूर्ण कामना के त्याग से कर्म संभव ही नहीं है। स्वाभाविक कामनाएं तो ईश्वर प्रदत्त है। उन्हें त्यागा नहीं जा सकता है।

कृत्रिम कामना और स्वाभाविक कामना में अन्तर करते हुए प्रो. दयानन्द भार्गव ने श्रीमद् भगवद्गीता

विपुलभाष्य में लिखा है कि शराब पीने की कामना किसी प्राणी में स्वभाव से सहज रूप में नहीं होती। बार-बार के अभ्यास से यह कामना उत्थाप्य है, उत्थित नहीं, इसे प्रयत्न पूर्वक पैदा किया जा सकता है। यह स्वयं उत्पन्न नहीं होती किन्तु सद्यः जात शिशु की माँ का स्तन पान करने की इच्छा उत्थित है, उत्थाप्य नहीं। वह इच्छा ईश्वर की इच्छा है। यदि शिशु में माँ के स्तनपान की इच्छा न हो तो वह जीवित नहीं रह सकता। प्रायः सभी व्यक्तियों में आहार-निद्रा की इच्छा इसी कोटि की है।[6]

अतः यह स्पष्ट हुआ कि उत्थित इच्छाओं की पूर्ति हो और उत्थापित इच्छाओं का शमन हो। उत्थित इच्छाओं का सीमाकरण जरूरी है। भूख लगी तो हम सीमित भोजन करते हैं। असीमित भोजन करने से अजीर्ण की बीमारी होती है। अतः भागवत्कार कहते हैं कि व्यक्ति का स्वत्व उतने पर ही है जितने से उसका पेट भर जाये, जो इससे अधिक को अपना मानता है, वह चोर है और दण्डनीय है–

"यावत्भ्रियते जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनः।
अधिकं योऽभिमन्येत सःस्तेनः दण्डमर्हति।"

अतः स्पष्ट है कि कृत्रिम कामनाओं के त्याग और स्वाभाविक कामनाओं के आधार पर कर्म होना चाहिए।

कर्म का नहीं फलासक्ति का त्याग जरूरी– प्रायः गीता पर यह आरोप लगाया जाता है कि गीता कर्म के त्याग पर बल देती है। जबकि वास्तविकता में ऐसा नहीं है। गीता में तो श्रीकृष्ण अर्जुन से बार-बार कर्म करने हेतु प्रेरित करते हैं। युद्धभूमि में अर्जुन को यह चिंता हो गयी थी कि इससे हमारे बन्धु-बान्धव, रिश्तेदार मारे जायेंगे अर्थात् फल की चिंता हो गयी थी। फल की ही नहीं अपितु फल में इतनी आसक्ति हो गयी थी कि युद्धभूमि में धनुष-वाण रखकर वह कर्त्तव्यकर्म से विमुख होना चाहता था। प्रायः ऐसा ही होता है जब फल पर ही दृष्टि रखी जाती है। फल पर दृष्टि रखने से कर्म की उपेक्षा हो जाती है, तभी तो गीता कहती है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा तेसङ्गोऽस्त्व कर्मणि।।[7]

अर्थात् हे अर्जुन कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है, फल प्राप्ति में नहीं है। तुम कर्म के फल का कारण मत बनो और साथ ही कर्म न करने में भी आसक्ति मत रखो।

गीता कर्म फल की आसक्ति के त्याग पर बल देती है। कर्म फल की आसक्ति खतरनाक परिणाम को अंजाम देती है। जो छात्र अच्छे नंबर से उत्तीर्ण होने की रट लगाये रखते हैं अर्थात् फल के प्रति जरूरत से ज्यादा आसक्त होते हैं। अनुकूल परिणाम न मिलने पर वे आत्मघात जैसे जघन्य कृत्य कर लेते हैं। ऐसे जघन्य कृत्य से बचने के लिए ही गीता फलासक्ति को छोड़ने की बात करती है–

"योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"[8]

अर्थात् हे अर्जुन! योग में स्थिर रहकर सफलता-असफलता में समान बुद्धि रखकर तथा आसक्ति का त्याग कर कर्म करो। इसे ही समता योग कहा गया है अर्थात हर परिस्थिति में समान रह कर कर्म करो।

आत्मतृप्ति के लिए कर्म– यों तो गीता में फलासक्ति के बिना कर्म करने का उल्लेख है। प्रश्न उठता है कि क्या फल के बिना कर्म किया जा सकता है। हर व्यक्ति किसी न किसी उद्देश्य को लेकर कर्म करता है। यह सकाम कर्म है। सकाम कर्म बन्धनकारी है। कर्मों का जो लौकिक अभ्युदय रूप फल है, वह तो अत्यन्त तुच्छ है। किन्तु जब हम अमृत रूप ज्ञान और मृत्यु रूप कर्म में अविनाभाव मानकर ज्ञान और कर्म दोनों को ही श्रुति के आधार पर आत्मा का धर्म मान लेते हैं तो स्वाध्याय आदिकर्म आत्मधर्म हुए। इन कर्मों का मुख्य फल आत्मतृप्ति है न कि लौकिक अभ्युदय। लौकिक अभ्युदय तो स्वतः मिल जाता है जैसे खेती अनाज के लिए की जाती है किन्तु भूसा स्वतः मिल जाता है। कोई किसान भूसा के लिए खेती नहीं करता है। वैसे ही कोई साधक लौकिक अभ्युदय के लिए कर्म नहीं करता है। उसके कर्म आत्मतृप्ति के लिए होते हैं, परमात्मा की प्राप्ति के लिए होते हैं किन्तु लौकिक अभ्युदय स्वतः मिल जाते हैं। कहा भी गया है–

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।"[9]

अर्थात हे अर्जुन! तू अनासक्त भाव से निरन्तर कर्म करो क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त करता है। अतः तुच्छ फल से ऊपर उठकर श्रेष्ठ कर्म करो। श्रेष्ठ कर्म वही है जो परमात्मा को समर्पित है। ऐसे कर्म करने से कोई चिन्ता नहीं होती। चिन्तामुक्ति होगी तो क्षोभ भी नहीं होगा। क्षोभ नहीं होगा तो आत्म कल्याण होगा।

अहंकाररहित कर्म करना श्रेयस्कर– प्रायः सभी धर्मों में अहंकार को प्रमुख दुर्गुण माना गया है। कहा जाता है कि जिसने भी अहंकार किया, उसका विनाश हुआ। चाहे वह प्रतापी रावण हो या अधर्मी दुर्योधन, सबका पतन हुआ। अहंकार तमोगुण का परिणाम है। अहंकार के कारण विवेक नष्ट होता है और विवेक के अभाव में किया गया कोई कर्म सार्थक नहीं होता। इसलिए अहंकारयुक्त कर्म निरर्थक है। अहंकार से संयुक्त व्यक्ति अपने आपको ही कर्त्ता समझने लगता है जबकि किसी भी कार्य की निष्पत्ति में अकेला वह कारण नहीं है, अन्य कारण भी हैं। गीता कहती है–

"विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरंहकारः स शान्तिमधिगच्छति"[10]

अर्थात जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़कर ममता और अहंकार से रहित होकर निस्पृह भाव से जीवन यापन करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। गीता जिस शान्ति का उल्लेख करती है वह अहंकार रहित कर्म करने से प्राप्त होती है। अहंकार में व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। वह निर्णय करने की स्थिति में नहीं रह जाता है। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो करणीय और अकरणीय में भेद नहीं कर पाता है। जिसके कारण वह अनर्थ एवं अहितकारी कर्म कर लेता है, जिसके लिए उसे जीवनभर पश्चाताप करना पड़ता है।

विवेकपूर्ण कर्म करें– कुछ लोगों के अनुसार गीता कर्म के त्याग की शिक्षा देती है। कर्म बन्धनकारी है अतः कर्म नहीं करने चाहिए किन्तु यह यथार्थ नहीं है, यह अर्धसत्य है। गीता तो विवेकपूर्वक कर्म करने की शिक्षा देती है। गीता कहती है कर्म का उत्प्रेरक विवेक बने, न कि फल की वासना। विवेकपूर्ण कर्म किया जाय और फल न मिले, यह असम्भव है। कारण होने पर कार्य होता है। अकारण कोई कार्य नहीं होता। विवेकपूर्ण कर्म कारण है तो परिणाम भी अच्छा होगा। यद्यपि गीता में यह प्रसिद्ध कथन है कि कृष्ण अर्जुन को अपनी शरण में आने के लिए प्रेरित करते हैं। अर्थात भक्त को सदैव भगवान की शरण में रहना चाहिए। यह अत्यन्त प्रसिद्ध कथन है किन्तु गीता में बुद्धि की शरण में जाने को भी कहा गया है। बुद्धि हमारी इन्द्रियों को नियंत्रित करती है, पथभ्रष्ट नहीं होने देती। सदा सन्मार्ग पर प्रवृत्त करती है। विवेकी पुरूष सदैव सत्कार्य में प्रवृत्ती होता हुआ संसार को पार लगा लेता है।

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।[11]

अर्थात् जो इन्द्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले भोग है, वे यद्यपि विषय में लीन पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो निस्सन्देह दुःख के हेतु है और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं, इसलिए हे अर्जुन बुद्धिमान, विवेकी पुरुष इन विषय भोगों में नहीं रमते हैं। अतः विषय वासनाओं से निवृत्त होकर विवेकपूर्ण कर्म करना चाहिए ताकि उसके दुष्परिणामों का भागी न बनना पड़े।

कर्त्तव्य कर्म की प्रेरणा– प्रश्न उठता है कि गीता किस प्रकार के कर्म करने की प्रेरणा देती है? यदि फल की इच्छा से कर्म नहीं किये जाने चाहिए तो फिर किस प्रकार के कर्म किये जाने चाहिए या कर्म ही नहीं किये जाने चाहिए? यदि कर्म बन्धन का कारण है तो कर्म ही क्यों करें? गीता अकर्म योग की शिक्षा नहीं देती है। गीता में कर्म योग की प्रधानता है। अकर्म से कर्म अच्छा है–

"नियतं कुरू कर्मत्वं कर्मज्यायोह्य कर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।"[12]

अर्थात शास्त्राविधि से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करने चाहिए। अकर्म से कर्म करना श्रेयस्कर है। अकर्म से शरीर का भी निर्वाह नहीं होता है।

यहाँ यह स्पष्ट है कि स्वधर्म के अनुसार कर्म करना चाहिए अर्थात कर्त्तव्य कर्म करना चाहिए। गीता की आस्था वर्णाश्रम व्यवस्था में स्पष्टदृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक वर्ण के अपने कर्म निर्धारित हैं। ब्राह्मण को यज्ञ, पठन, पाठन के कार्य, क्षत्रिय को रक्षा का कार्य, वैश्य को व्यापार एवं शूद्र को सेवा का कार्य निष्ठा से करना चाहिए। स्वधर्म ही स्वकर्म है, गीता का यह आर्षवाक्य है। अपने धर्म के लिए तो मरना भी कल्याणकारी है–

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात।
स्वधर्मेनिधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।"[13]

अपने धर्म के अनुसार ही अपना कर्म होना चाहिए। उसमें यत्किंचित कमी भी है तो वह दूसरे धर्म से श्रेष्ठ है। पाश्चात्य का एक दार्शनिक ब्रेडले है जो कर्त्तव्य को करने पर बल देता है। उसका मानना है कि समाज में किसी पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति यदि अपने पद के अनुरूप कार्य करे तो समाज में किसी भी प्रकार की समस्या नहीं होगी।[14] अर्थात

छात्र का धर्म है- पढ़ना, शिक्षक का धर्म है पढ़ाना, डॉक्टर का धर्म है रोगी की सेवा करना, कारीगर का धर्म है अच्छी इमारत बनाना। इस प्रकार सभी को अपने कर्त्तव्य धर्म बिना किसी फलेच्छा के कर्त्तव्य को ध्यान में रखकर करने चाहिए।

निष्काम कर्म की शिक्षा– इस प्रकार गीता अकर्म से निवृत्त होकर कर्म करने की ही प्रेरणा नहीं देती अपितु निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देती है। निष्काम कर्म से तात्पर्य केवल फल रहित कर्म ही नहीं अपितु फलासक्ति रहित कर्म करने चाहिए। अहंकार, ममकार से रहित कर्म निष्काम कर्म है, रामद्वेष रहित कर्म निष्काम कर्म है। आत्मतृप्ति के लिए किया गया कर्म निष्काम कर्म है। प्रत्येक परिस्थिति में सम रहकर किया जाने वाला कर्म निष्काम कर्म है। गीता कहती है–

"न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषुलोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव चकर्मणि।।"[15]

अर्थात हे अर्जुन तीनों लोकों में मेरे लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है और न ही ऐसी कोई प्राप्त होने योग्य वस्तु है जो अप्राप्त है, तो भी मैं कर्म करता हूँ। तात्पर्य यह भी है कि कृष्ण का यह संदेश है कि निष्काम भाव से बिना किसी इच्छाओं के सभी को कर्म करते रहना चाहिए।

गीता के अनुसार कर्म की गति गम्भीर है। कर्म के स्वरूप को समझकर कर्म करने चाहिए। अकर्म के स्वरूप को समझकर भी कर्म करने चाहिए तथा निषिद् कर्म के स्वरूप को भी समझकर कर्म करने चाहिए–

कर्मण्येहयपि बोद्धव्यं बोधव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहनाकर्मणो गतिः।।"[16]

निष्काम कर्म कत्तृत्व अभिमान को त्याग कर फलासक्ति रहित कर्म को कहते हैं। ऐसे कर्म भगवान को समर्पित करके किये जाते हैं–

"त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृतोऽपि नैव किंचितकरोति सः।।"[17]

अर्थात् जो पुरुष सांसरिक आश्रय से रहित सदा परमानन्द परमात्मा में तृप्त है, वह कर्मों के फल और आसक्ति तथा अभिमान को छोड़कर कर्म करता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है। अर्थात निष्काम कर्म करते हुए वह कर्मबन्धन नहीं करता है।

♦ ♦ ♦

इस प्रकार गीता के 'कर्मयोग' का फलितार्थ है–

1. कर्म छोड़ने से कर्म करना श्रेयस्कर है।
2. फलरहित कर्म करने चाहिए।
3. फलासक्ति रहित कर्म श्रेष्ठ है।
4. अहंकाररहित कर्म करने चाहिए।
5. वेदोक्त कर्म करने चाहिए।
6. सहजकर्म करने चाहिए।
7. विवेकपूर्ण कर्म करने चाहिए।
8. तटस्थभाव से कर्म करने चाहिए।
9. यज्ञ ओर लोकस्थिति बनाये रखने के लिए कर्म करना चाहिए।
10. कर्म ही नैष्कर्म्य की प्राप्ति का उपाय है।

इस प्रकार गीता निष्काम कर्म की शिक्षा देती है। निष्काम कर्म करने वाला कभी कर्मबन्धन में नहीं पड़ता अपितु सांसारिक बन्धनों को काटने में सफल होता है। यही गीता का कर्म योग है, यही गीता का निष्काम कर्म है।

संदर्भ सूची -

1. भगवदगीता, 3/27
2. वही, 18/14
3. वही, 14/9,10
4. वही, 14/17
5. सांख्यकारिका, श्लोक-2
6. श्रीमद्भगवद्गीता विपुलभाष्य, पृ. 39
7. भगवद्गीता, 2/47
8. वहीं, 2/48
9. वहीं, 3/19
10. वहीं, 2/71
11. वहीं, 5/11
12. वहीं, 3/8
13. वहीं, 3/35
14. My Place and My Service
15. गीता, 3/22
16. वहीं, 4/17
17. वहीं, 4/20

निदेशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (नागौर) राज.